IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

पश्चिमिकरण का ग्रामीण महिलाओं पर प्रभाव

(भारतीय महिलाओं के संदर्भ में)

डॉ0 हरेन्द्र सिंह

वरिष्ठ शोध अध्येता शिक्षा विभाग हिन्दू कॉलेज, मुरादाबाद

सारांश

पश्चिमीकरण के फलस्वरूप आज महिलायें अपना बौद्धिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक विकास करने के बजाय सस्ते, कामुक और उपभोक्तावादी जाल में फंसकर गुलामी की तरफ कदम बढ़ा रही हैं। आधुनिक मीडिया विशेष रूप से केबिल टी0वी0 द्वारा जो उदारवादी पाश्चात्य संस्कृति फैलीयी जा रहो है वह पितृसत्तात्मक मूल्य व्यवस्था को ही बढ़ावा दे रही है। पश्चिमीकरण की प्रक्रिया में महिलाओं को हाशिये पर लाने की प्रक्रिया तथा महिलाओं का वस्तुकरण तेजी के साथ बढ़ा है। प्रस्तुत लेख में यह जानने का प्रयास किया गया है कि पश्चिमीकरण ने भारतीय महिलाओं को कहां तक प्रभावित किया है।

आधुनिक युग में पश्चिमीकरण एक अत्यंत महत्वपूर्ण व चर्तित विषय बन गया है जो जीवन, संस्कृति और संस्थाओं को एक नवीन आकार प्रदान कर रहा है। विभिन्न वर्गों पर इसका प्रभाव अलग–अलग रूपों में पड़ रहा है। कुछ विशेष वर्ग के स्त्री पुरूषों के लिए यह लाभदायक है जबकि अधिकांश स्त्री पुरूषों के लिए यह अस्सितत्व के लिए संघर्ष करने जैसा है। कहीं यह खगोलीकरण है तो कहीं वैश्वीकरण और कहीं पश्चिमीकरण है तो कहीं विश्वव्यापोकरण जिसमें राष्ट्रों आर समुदायों द्वारा शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के कुछ समान नैतिक सिद्धांतों को स्वीकार करने की बात कही जाती है पर उसके वास्तविक रूप लेने से बहुत पहले हमारे यहां ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' और ''सर्वोभवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः'' के आदर्श विद्यमान थे। ब्लैकवैल डिक्शनरो ऑफ सोशियोलॉजी के अनुसार, 'पश्चिमीकरण वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत विभिन्न समाजों का सामाजिक जीवन, राजनीतिक एवं व्यापारिक क्षेत्र से लेकर

संगीत, वेशभूषा एवं जनमीडिया के क्षेत्रों तक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अत्यंत द्रुतगति से प्रभावित हुआ है।''[1]

आज पश्चिमीकरण के इस दौर में लोगों की प्राथमिकतायें बदल गयी हैं, नहीं बदली हैं तो उन गरीबों की जिनकी बदल नहीं सकती। उनके लिए तो रोटी, कपड़ा और मकान, बच्चों की शिक्षा, अपने लिए थीड़ी सी स्वास्थ्य सेवायें पहले भी प्राथमिक थीं और आज भी भी हैं। प्राथमिकताये तो उनकी बदली हैं जिसका महत्व है और जिनकी बात सुनी जाती है। इस पश्चिमीकरण ने समाज के उस वर्ग को ज्यादा प्रभावित किया है जो खामोशी के साथ दमन, शोषण व वंचन को शताब्दियों से झेलता रहा है। इनमें महिलाओं का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। उसकी स्थिति पर पश्चिमीकरण की नीतियों का बुरा असर पड़ा है जो उन्हें आर्थिक और सामाजिक रूप से प्रभावित कर रहा है। ''पितृसत्तात्मक समाज में सर्वत्र विद्यमान पुरूष प्रधानता एवं वातावरण ने स्त्रियों और पुरूषों के बीच असमान शक्ति सम्बन्ध स्थापित किये हैं। पितृसत्ता, भेदभाव और अन्य कई स्तरों पर महिलाओं के लिए पृथकता और अभाव के लिए जिम्मेदार है। महिलाओं ने भी अपनी अधीनस्थ स्थिति को सामान्य सामाजिक प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार कर लिया है। पुरूषों और महिलाओं में यह जागृति बढ़ी है कि असमानता, भेदभाव और वंचना ने महिलाओं के कई मूलभूत अधिकारों को उपेक्षित और समाप्त सा कर दिया है।''[2]

भारतीय समाज में नारी का स्थान पूजनीय रहा है। नारी देवत्व की प्रतिमा है। समाज तथा सभ्यता के विकास में नारी का योगदान अतुलनीय है। कभी वह बेटी बनकर परिवार की शोभा बढ़ाती है तो बहन बनकर भाईयों से दुलार करती है, वहीं मां बनकर संतान का लालन–पालन करती है। बड़ी होने पर उसका सम्मान कम नहीं होता और दादी–नानी बनकर गौरवमय जीवन जीती है। जहां भी स्त्री के सम्मान को चोट पहुँची है वहां विकास नहीं विनाश हुआ है। भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व में स्त्री का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। यूनानी दार्शनिक प्लेटों ने संरक्षक वर्ग के अन्तर्गत स्त्री पुरूष की समानता स्वीकार की थी, वहीं मनुस्मृति में भी कहा गया था–''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः; लेकिन यह कहकर कि ''न नारी स्वावंत्रयमर्हति'' अर्थात् नारी स्वतंत्र रहने योग्य नहीं है नारी को पुरूष के अधीन कर दिया गया। स्त्री को देवी कहकर पूजा भी गया पर परिस्थितिवश सीता जैसी देवी को घर भी छोड़ना पड़ा। इसलिए आज महिला हर क्षेत्र में पुरूष की प्रतियोगी होकर भी पहले से कहीं ज्यादा असुरक्षित है। स्वच्छंद वातावरण में जीने का अधिकार तो उससे हमेशा से छीना गया है। बचपन में पिता व भाई, शादी के बाद पति व पति के बाद पुत्र के संरक्षण में उसे जीवन बिताना होता है। आखिर सृष्टि की जन्मदात्री का भाग्य इतना दयनीय क्यों है? आज से कुछ वर्षों पूर्व लड़कियां बोझ मानी जाती थीं और माता–पिता नवजात कन्याओं की हत्या गला

दबाकर कर देते थे या फिर फेंक देते थे पर आज वैश्वीकरण व उदारीकरण के दौर में भी यह प्रथा कायम है पर कुछ अलग अंदाज में। जहाँ पहले कन्या की हत्या उसके जन्म के बाद की जाती थी, वहीं आज कन्या की हत्या मां के गर्भ में ही कर दी जाती है।

पूर्वी उत्तर प्रदेशा, बिहार और राजस्थान में बेटी के पैदा होते ही मार डालने का दस्तूर पुराना है पर अब यह गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र तमिलनाडु और कर्नाटक में भी फैलता जा रहा है। 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में 1000 पुरूषों के अनुपात में महिलाओं की संख्या 933 है और 0–6 आयु वर्ग में लड़कियों की संख्या 927 है। देश के सम्पन राज्यों (दिल्ली, पंजाब, हरियाणा) में भी यह प्रवृत्ति तेजी से बढ़ रही है।यूनीसेफ की वार्षिक रिपोर्ट 2007 के अनुसार, भारतीय राज्यों में सबसे खराब स्थिति पंजाब की है। यहां लड़कों पर 798 लड़कियां हैं जो 11991 में 875 थीं। देश के 25 राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों पांडिचेरी में यह अनुपात सबसे अच्छा हैं। वहां 1000 बालकों 998 बालिकायें हैं जबकि उत्तर प्रदेश में 948, बिहार में 877 और दिल्ली में 919 है। सुप्रसिद्ध बंगला लेखक शरत चन्द्र का कहना था कि ''मानव का मरना उतना दुखदायी नहीं होता, जितना कि मानवता की मौत।''[3] निश्चित ही कन्या भ्रूण हत्या से हर साल लाखों कन्याओं की हत्या ही नहीं हो रही है, बल्कि इससे मानवता का अंत होता है। गर्भपात का निर्णय दम्पत्ति का ही नहीं होता, बल्कि इसके लिए पारिवारिक पृष्ठभूमि, सामाजिक व्यवस्था, संकीर्ण मानसिकता, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, दहेज प्रथा जैसे कुरीतियां उत्तरदायी हैं। सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्रमें विश्व में अपना डंका बजाने वाले देश भारत में आज भी प्रथम कन्या का जन्म दुर्भाग्य, दूसरी का जन्म अभिशाप और तीसरी कन्या का जन्म विनाश माना जाता है। यह प्रश्न है कि सम्पन्नता और विकासशीलता के बावजूद भी भारत के सामाजिक जीवन में स्त्रियों की भूमिका का इतना कम महत्व क्यों है। इसके लिए सभायें या सेमीनार करके कन्या भ्रूण हत्या को रोकने की आवश्यकता तो है ही, समाज के विभिन्न क्षेत्रों से धार्मिक, सामाजिक संगठनों की भागीदारी भी आवश्यक है।भारत सरकार द्वारा सोनोग्राफी के विरूद्ध नियम लागू करके तथा दूरदर्शन पर दिखाये जाने वाले विज्ञापन से कुछ सीमा तक समाज में इसके प्रति भय व्याप्त हुआ है। इसके अतिरिक्त 1994 के प्रसव पूर्व नैदानिक तकनीक अधिनियम में संशोधन करने की आवयकता है क्योंकि इस कानून में कई कमियां है और व्यवहारिक क्रियान्वयन संभव नहीं हो पा रहा है। ब्रिटिश मेडीकल जर्नल सेलेंट के अनुसार भारत में प्रतिवर्ष 500000 कन्या भ्रूण हत्या होती है। जिस नारी के बिना पुरूष अधुरा हो, वहीं पुरूष के हाथों की कठपुतली बने, वही पुरूष के द्वारा सतायी जाये, यह न तो उचित है और न ही सभ्य समाज का लक्षण है। यह उस समाज का दुर्भाग्य नही तो और क्या है जहाँ पुरूषों के मुकाबले नारियों की संख्या कम होती जा रही हो, वह भी किसी प्राकृतिक कारण से नहीं, मानवीय कारण से।

आज गंभीरता से इस पर विचार करना होगा कि यदि नारी ही नहीं रहेगी तो इस धरती पर मानव जीवन की उत्पत्ति कैसे संभव होगी। धार्मिक दृष्टिकोण से भी सोचें तो कोई भी धर्म इसकी मान्यता नहीं देता क्योंकि संसार के प्रत्येक धर्म में हत्या को पाप माना गया है। शिक्षित लोग भी इस परम्परागत सोच में परिवर्तन नहीं कर पाये हैं कि ''वंश तो बेटों से ही चलता है और पुत्र ही मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।'' वास्तव में हमारा समाज पुत्र की इच्छा का मारा हुआ है। इसी मानसिकता और सोच के कारण ही इस दुनिया में आने के बाद एक कन्या शिशु को जन्म देने के बाद से ही भेदभावपूर्ण व्यवहार झेलना पड़ता है। भोजन व अन्य दूसरी आवश्यक वस्तुओं की कमी के कारण भारत में गरीब लोग कन्या शिशुओं को बालक शिशुओं की तुलना में प्रायः कम खिलाते हैं। उनकी सोच होती है कि लड़का घर में पैसे कमाकर लायेगा, परिवार का पेट भरेगा, जबकि लड़की तो पराया धन है। यहां तक कि अपनी माँ का दूध भी उसको कम समय तक पीने को मिलता है। एक लड़के की तुलना में उसे कम पौष्टिक भोजन मिल पाता है। अतः उसका शारीरिक विकास और वृद्धि धीमी गति से होते हैं, जबकि उसकी शारीरिक संरचना और काम की परिस्थिति के कारण उसे अच्छे और पौष्टिक भोजन की आवश्यकता होती है। अधिकतर घरों में महिलाएं सबसे बाद में भोजन करती हैं और अक्सर वह बचा कुचा खाकर ही संतोष कर लेती हैं। इससे वे थकावट, कमजोरी जल्दी–जल्दी बीमार पड़ना, कुपोषण और रक्ताल्पता से ग्रसित हो जाती हैं। हमारे यहां 80 प्रतिशत से अधिक गर्भवती मातायें खून की कमी का शिकार हैं।इसी कारण इन स्त्रियों के बच्चे भी कुपोषण के शिकार है।[5] मुम्बई, कलकत्ता और चेन्नई में लड़कियों का कुपोषण ज्यादा है। परिणामस्वरूप बहुत सी महिलाओं को जीवन देने के लिए अपनी जान की कुर्बानी देनी पड़ती है। हमारे देश में मातृत्व मृत्युदर 407 प्रति लाख है जिसे पौष्टिक भोजन, उचित देखभाल व सुरक्षित प्रसव सेवा द्वारा समाप्त किया जा सकता है। विश्वव बैंक की रिपोर्ट में इस बात को रेखांकित किया गया है कि भारत ने भले ही अनाज उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली हो लेकिन बच्चों के पोषण के मामले में वह अभी भी कोसों दूर है।

पश्चिमीकरण के दौर में स्त्री पुरूष की समानता की दुहाई देने वाले हमारे समाज में बीमार होने पर महिलाओं को गंभीर स्थिति में ही अस्पताल ले जाया जाता है। सरकारी रिकार्ड बताते हैं कि पुरूषों की अपेक्षाकृत महिलाओं को अस्पताल कम लेकर जाते हैं। आज भी हमारे यहां प्रसव पूर्व सेवायें शोचनीय दशा में हैं, केवल 53.8 प्रतिशत को टिटनेसटाक्साइड के टीके मिल पाते हैं, 46 प्रतिशत गर्भवती महिलाओं का रक्तचाप लिया जाता है। अब भी 2/3 प्रसव घर पर हो रहे हैं और केवल 43 प्रतिशत गर्भवती महिलाओं को प्रशिक्षित स्वास्थ्यकर्मियों की सेवायं प्राप्त हैं। शिशु जन्म के उपरांत भी महिलाओं को बहुत कम और कन्या शिशु के मामले में कोई देखभाल उपलब्ध नहीं होती।[6]

लैंगिक भेदभाव के चलते हमारे पितृ सत्तात्म समाज में महिलाओं पर वर्तमान में दोहरा कार्य बोझ है। एक महिला को घर के अदर तथा घर के बाहर लंबी अवधि तक प्रतिदिन कार्य करना पड़ता है। औसतन एक महिला 12–18 घंटे काम करती है। घटती हुई आर्थिक सहायता या सहायिकी के परिणामस्वरूप खाद्य सूरक्षा लगातार कम हुई है तथा गरीब महिलाओं को पहले से अधिक अर्थहीन व अनुत्पादक श्रम में और अधिक समय लगाना पड़ रहा है। अपने पुरूषों की बढ़ती हुई छंटनी के कारण कामगार महिलायें जो पहले खेतिहर मजदूर के रूप में जीविका कमाती थीं, एसे संगठित नगरीय क्षेत्रों में जाने के लिए मजबूर हैं जहां उन्हें भुखमरी या अर्द्धभुखमरी के स्तर पर मजदूरी मिलती है। स्वाभाविक रूप से काम पाने के लिए पहले से अधिक उपेक्षा और अपमान सहना पड़ता है।पश्चिमीकरण की सफलता का प्रतीक माने जाने वाले राज्य आंध्र प्रदेश के गांवों में महिला कामगारों की स्थिति दयनीय तथा शोचनीय है। सुबह घर से निकलकर रात दस बजे तक घर पहुंचने की स्थिति में भी उन्हें मात्र 20–30 रूपये की मजदूरी मिलती है। शहरी क्षेत्रों में स्थिति और भी बदतर है शहरी भारत के 945 रोजगार दफ्तरों में 2003 में 1.7 करोड़ महिलाओं के नाम दर्ज थे। जिनमें से 70 प्रतिशत से अधिक दसवीं पास या उससे अधिक पढ़ी लिखी थीं और ये महिलायें भी पलायन के लिए मजबूर हैं।

महिलाओं के शोषण का एक कारण यह भी है कि वे आसानी से संगठित नहीं हो पाती हैं और इसीलिए मालिकों को भी महिला कामगर रखना सुविधा जनक लगता है लेकिन वैश्वीकरण के दौर में बढ़ते मशीनीकरण और निर्माण उद्योग की बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आन से महिला मजदूरों के रोजगार पर बहुत गहरा असर पड़ा है। हजारों लोगों का या तो रोजगार खत्म हो गया है या खत्म होने के दौर में है। बुनियादी ढांचे की बड़ी परियोजनाओं में तेजी से हुई वृद्धि के कारण मित्सुई, हुंडई, सैमसंग कम्पनियों ने भी यहां पैर जमा लिये हैं। वे आधुनिक आयातित निर्माण उपकरण और प्रौषेगिकी का बड़े पैमाने पर उपयोग करके महिला मजदूरों के पेट पर लात मार रहे हैं। सिंधु मेनन ने लिखा है– ''नई प्रौद्योगिकी का उपयोग शुरू होते ही ज्ञान कौशल और आजीविका के स्तर पर महिलाओं की छुट्टी होने लगती है।''[7]

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की महिला वैश्विक रोजगार रिपोर्ट के अनुसार समान काम के लिए अभी भी पुरूषों की तुलना में महिलाओं को वेतन कम मिलता है। विश्व के कुल 2.9 अरब रोजगार में लगे लोगों में महिलाओं की संख्या पहले से अधिक है। कुल आबादी में आधी होते हुए भी महिलायें दो तिहाई काम करती हैं, पर उनका काम एक तिहाई दर्ज हो पाता है। 70 प्रतिशत महिलायें खेती के कार्य में संलग्न हैं। विश्वि के कार्य का 60 प्रतिशत कार्य महिलायें पूरा करती हैं पर एक प्रतिशत विश्वभूमि पर उनका स्वामित्व है और विश्वव्यापी आय में केवल 10 प्रतिशत की भागीदारी है। वल्ड इकोनोमिक फोरम की रैंकिग के अनुसार महिलाओं के

आर्थिक सशक्तिकरण के क्षेत्र में भारत 115वें नम्बर पर है। संयुक्त राष्ट्र आर्थिक और सामाजिक आयोग (एशिया प्रांत के लिए) के वार्षिक आर्थिक सर्वेक्षण 2007 के अनुसार यदि भारत में महिलाओं की भागीदारी अमेरिका के बराबर हो जाये तो देश का सकल घरेलू एत्पाद 4.2 पतिशत की दर से बढ़ेगा और वृद्धि दर 1.08 प्रतिशत बढ़ जायेगी जिससे अर्थ व्यवस्था को 19 अरब डालर का लाभ होगा जबकि महिलाओं को रोजगार के अवसरों की सुलभता सीमित होने के कारण इस क्षेत्र को प्रतिवर्ष 42 से 47 अरब डालर का घाटा उठाना पड़ रहा है। शिक्षा में अंतर होने के कारण भी 16 से 18 अरब डालर का आर्थिक नुकसान हो रहा है और यदि यह अंतर कम नहीं किया गया तो प्रतिवर्ष 30 डालर की अतिरिक्त कीमत चुकानी होगी। पश्चिमीकरण लोगों को और अधिक लालची व भौतिकवादी बना रहा है। इसीलिए आज समाज में दहेज की मांग तेजी से बढ़ रही है। कभी–कभी कुछ अभिभावक लड़कियों की शिक्षा को बीच में ही रोक देते हैं, कारण लड़की को जितना अधिक पढ़ायेंगे, उसके लिए वर भी उतना ही अधिक पढ़ा लिखा चोजना पड़ेगा और लम्बा चौड़ा दहेज भी देना होगा। कुछ लड़कियां अपराध या मानसिक असंतुलन का शिकार हो जाती हैं। दहेज गरीब अभिभावकों को पहले से अधिक आर्थिक समस्याओं व अपमानजनक परिस्थितियों में ढकेल रहा है। यद्यपि अक्टूबर 2006 को घरेलू हिंसा निवारण अधिनियम पारित किया गया आर सैद्धांतिक रूप से भी महिलाओं को पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त हैं पर व्यवहारिक रूप में कुछ अपवादों को छोड़कर महिलाओं को दोयम दर्ज ही दिया गया है। भारत में आई पी सी के अन्तर्गत प्रतिवर्ष घटित होने वाले कुल अपराधों में 6 प्रतिशत महिलाओं के प्रति होते हैं।

बढ़ते हुए पश्चिमीकरण ने कथित सौन्दर्य प्रतियोगिताओं को जुनूनी हद तक बढ़ावा दिया है। इन प्रतियोगिताओं में भारत की महिलाओं को आगे लाने में भी वैश्वीकरण की सोच काम कर रही है। ऐसा लगता है जैसे कुछ वर्षों से सम्पूर्ण ब्रह्मांड का सौन्दय भारत में ही बस गया है। विश्व स्तर से गुजरती हुई यह सौन्दर्य प्रतियोगितायें अब जिला स्तर यहां तक की विद्यालय स्तर पर भी आ गयी हैं। अरविंद के अनुसार ''इस पागलपन का लाभ तो वे निगम या संस्थायें कमा रही हैं, जो ऐसे कार्यक्रमों के द्वारा अपने उत्पादों का विज्ञापन करती है लेकिन मानसिक स्तर पर इसका दुष्प्रभाव शहरी मध्यम वर्ग या निम्न मध्यम वर्ग की लड़कियों पर पड़ता है।''[8]

इसके अतिरिक्त इस वैश्विक बाजारी अर्थ व्यवस्था ने देह–व्यापार को सेवा क्षेत्र की एक जायज प्रणाली बना दिया है। आज के दौर में खाते–पीते या समृद्ध परिवारों की अनेक लड़कियां ऐसे ही ब्यूटी पार्लर, मसाज पार्लर व आओ दोस्ती करें जैसे उद्योगों के माध्यम से वेश्यावृत्ति व कालगर्ल के धन्धें में जाने से भी नहीं हिचकतीं। बाजारी अर्थव्यवस्था में प्रत्येक वस्तु बिकाऊ हो गयी है।

आज के मुक्त बाजार व्यवस्था में स्त्री देह, उसका सौन्दर्य विज्ञापन दाताओं के हक में बहुत कारगर भूमिका निभा रहा है। स्त्री देह का बाजारीकरण करके विज्ञापन एजेन्सियां अपने और अपने ग्राहकों की हित साधक बनी हुई हैं। आज बहुत कम विज्ञापन ऐसे हैं जहां स्त्रियों का चित्रण न हो शेविंग ब्लेड, टी0वी0, टायर, जूते आदि के विज्ञापन में स्त्री के देह प्रदर्शन से अनेक सवालिया निशान उठते हैं क्योंकि इन उत्पादों का स्त्री विशेष से कोई सम्बन्ध नहीं है। इनमें स्त्री के सौन्दर्य को बाजार की वस्तु बनाकर उपभोग की ही एक वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। विज्ञापन में एक ओर स्त्री की परम्परागत भारतीय छवि है जो दो रूपये की साबुन से पति की पैंट–शर्ट चमका देना चाहती है, जो मूव लगाकर अपने कमर दर्द को तुरंत जल्दी ही पुनः अपने काम पर जुट जाती ह, जो खास ब्रांड की चाय या कॉफी के प्याले से पति की थकान दूर करती है, जो टायलेट को चमका कर रखती है और उसकी दुनिया पति, घर और बच्चे तक सीमित है तो दूसरी ओर उसकी छवि ऐसी स्त्री की है जो अपनी देह का खुलेआम अश्लील प्रदर्शन करती है। और अपने सौन्दय को बनाये रखने के नये–नये तरीके अपनाती हैं। वास्तव में वैश्वीकरण के इस दौर में स्त्रियां अपना बौद्धिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक विकास करने के बजाय सस्ते कामुक और उपभेक्तावादी जाल में फंसकर गुलामी की तरफ ही कदम बढ़ा रही हैं। यहां तक कि आज बाजार कच्ची उम्र की मासूम बच्चियों को भी अपने मोहपाश में सैक्सी गुड़िया में तब्दील करने की पूरी कोशिश कर रहा है। यद्यपि यह अभी दबी–ढकी इच्छा के रूप में है लेकिन किशोरावस्था में पूर्व सैक्स की हवा भारत में पश्चिम देशों से आ तो चुकी ही है। बाल मनोवैज्ञानिक श्रीधर पटेल का मानना है ''बाजार, फिल्में और कुछ हद तक टी0वी0 छोटी स्कूली बच्चियों को प्रोत्साहित कर रहा है कि वे स्वयं को सैक्सी महसूस करें। बाजार में इस वर्ग के लिए ऐसी पोशाकों की भरमार है जो मूल रूप से लटके–झटकेदार आइटम नंबर्स के लिए डिजाइन की गयी थी।''[9]

आधुनिक मीडिया विशेष रूप से केविल टी0वी0 द्वारा जो उदारवादी पाश्चात्य संस्कृति फैलायी जा रही है, वह पितृसत्तात्मक मूल्य को ही बढ़ावा दे रही हैं। आज नारी केन्द्रित धारावाहिकों की बाढ़ आ रही है पर उनमं से कितने ऐसे धारावाहिक हैं जो नारी स्वतंत्रता और समानता को प्रसारित कर रहे हैं और महिला निर्माता महिला होते हुए भी ऐसे धारावाहिक बना रही हैं जो कभी महिलाओं को परम्पराओं के मकड़ जाल में बांधते हैं तो कभी नैतिकता के पतन की गर्त में ढकेल रहे हैं। आधुनिक मीडिया दर्शाता है कि आदर्श स्त्री वह है जो इस पुरूष प्रधान समाज की पितृसत्तात्मक मर्यादाओं के सामने सिर झुकाये व प्रतिगामी परम्पराओं का पालन करें। वास्तविकता यह है कि भूमण्डलीकृत हिन्दुत्व की छाया में सामंती मूल्य और पितृसत्तात्मक व्यवस्थापहले की तुलना में बढ़ी है। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में महिलाओं को हाशिये पर लाने की प्रक्रिया में महिलाओं को हाशिये पर लाने की प्रक्रिया पितृसत्तात्मक मूल्य

तथा महिलाओं का वस्तुकरण तेजी के साथ बढ़ा है।[10] इसके साथ ही निर्विवाद रूप से यह भी सत्य है कि मीडिया ने महिलाओं के अन्दर जमाने से आगे बढ़ने की भावना विकसित की है। वे स्वावलम्बी बनकर प्रत्येक क्षेत्र में पुरूषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चल रही है। सर्वप्रथम श्रीमती प्रतिभा पाटिल के रूप में इस देश को पहली महिला राष्ट्रपति मिली है। सोनिया गांधी, मायावती, शीला दीक्षित, वसुंधरा राजे समेत तमाम अन्य भारतीय राजनीति की सशक्त और कद्दावर व्यक्तित्व मानी जाती हैं। वित वाणिज्य के क्षत्रे में नैना लाल किदवई, ललिता गुप्ते, चंदा कोचर जैसी महिलायें शीर्षस्थ पदों पर विराजमान हैं। भारतीय मूल की सुनिता विलियम अंतरिक्ष कार्यक्रमों से जुड़े अभियान में एक चमकता सितारा है तो पेप्सिको की इंदिरा नूई की भी अलग पहचान है। बायेकॉन लिमिटेड की अध्यक्ष किरण मजूमदार शॉ को भारत की सर्वाधिक धनाण्य महिला का स्थान प्राप्त है। आज की रोल मॉडल ओपरा विनफ्र, किरन देसाई, हिलेरी क्लिंटन, सुस्मिता सेन, ऐश्वर्य राय हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण और जी डी पी दर के दो अंकों में रहने से बाजारीकृत कार्यों में दक्ष महिलाओं ने प्रत्येक स्तर पर अपनी प्रभावी उपस्थिति दर्ज करायी है पर आज भी भारत की अधिसंख्यक महिलाओं की स्थिति में कोई विशेष उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ है। आज भी महिला के चिंतन का केन्द्र बिन्दु पति और परिवार ही है।पश्चिमीकरण के बाबजूद परिवार में महिला की भूमिका के सन्दर्भ में पुरूष की मनोवृत्ति में विशेष परिवतर्न नहीं हुआ है।

पश्चिमीकरण औरतों के लिए एक ऐसी प्रक्रिया सिद्ध हो रही है जो उनका शोषण कर रही है। पश्चिमीकरण का एक चेहरा बेबस गरीब औरत का है जो अपने भूखे बच्चे के लिए आंखों में आंसू लिए खामोस और उदास है तो दूसरी ओर उसके चेहरे पर पूरी सामाजिक व्यवस्था के प्रति तीव्र आक्रोस है। आज हम उंगलियों पर गिनी जाने वालीकुछ महिलाओं को आगे बढ़ते हुए दिखाकर उन बहुसंख्यक महिलाओं की अनदेखी नहीं कर सकते जो गांवों में रहती हैं और अभो भी परम्परागत रूढ़ियों में जकड़ी हुई अभावों से जुझती हुई अपने अस्तित्व को बचाने के लिए संघर्षरत हैं। इस प्रकार पश्चिमीकरण एक अदृश्य शत्रु के समान एक छोटे से वर्ग का पोषण करते हुए करोड़ों लोगों के हितों को रौंदता हुआ आगे बढ़ रहा है। आज हमारे सामने वैश्वीकरण को हटाने का मुद्दा नहीं है वरन् हमें यही देखना है कि कैसे हम इसके दुष्प्रभावों को कम करते हुए महिलाओं के आत्म सम्मान की रक्षा कर उन्हें सशक्त बनायें और गर्व से कह सकें।

सन्दर्भ

1. हसनैन नदीम, 'समकालीन भारतीय समाज', भारत बुक सेन्टर, लखनऊ, 2004.
2. गोपालन सरला एवं मीरशिवा, 'नेशनल प्रोफाइल ऑन वूमैन, हैल्थ एण्ड डेवलपमेंट' न्यू देहली, वालिंटरी हैल्थ एसोसिएशन ऑफ इण्डिया, 2002.
3. सिंह राज बाला, 'मानवाधिाकार और महिलायें', आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2006.
4. शरतचन्द्र, 'समाज कल्याण', प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, फरवरी, 2008.
5. नेशनल फेमिली हैल्थ सर्वे, 1992–93.
6. लवानिया एम0एम0, 'भारतीय महिलाओं का समाजशास्त्र', रिसर्च पब्लिशर्स, जयपुर, 2004.
7. मेनन सिन्धु, 'समाज कल्याण', मई, 2004.
8. अरविन्द, ग्ललोबलाइजेशानः एन अटैक ऑन इण्डियाज सोवर्निटी' न्यू विस्डम पब्लिकेशन, न्यू इेलही, 2002.
9. संगिनी, दैनिक जागरण, 6 दिसम्बर, 2008.
10. नदीम हसनैन, पूर्वाक्त
11. मनुस्मृति 3–56.